# एक स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने–V

## बच्चों के समूह (पार्ट-I)

फ़राह फ़ारूक़ी

**बेहतर शिक्षण के लिए बच्चों के स्वभाव, उनकी भिन्नता, विविधता, रुचियों और रुझानों को समझना जरूरी है। ये सभी मिलकर स्कूली माहौल को जीवन्त बनाते हैं। साथ ही कुछ चुनौतियां भी पेश करते हैं। किशोरावस्था में प्रवेश करने वाले बच्चों के आकर्षण और उनके रुचि-रुझानों के हिसाब से बनने वाले समूहों, उनकी टकराहटों आदि का डायरी के इस हिस्से में एक सजीव चित्रण किया गया है।**

स्कूल में बच्चों के विभिन्न प्रकार के समूह देखने को मिलते हैं। स्कूली ज़िन्दगी को समझने के लिए इनके रूप-रंग और बरताव-हरकतों को समझना ज़रूरी है। कई बार समूह किसी ख़ास मक़सद को अंजाम देने के लिए बनते हैं जबकि कभी कुछ दोस्त अनकहे मक़सद से जुड़ बैठते हैं। समूह में व्यवहार व्यक्तिगत स्वभाव से कम और समूह की अपनी पहचान से ज़्यादा मुतास्सिर होता है। इस क़िस्त में जिस समूह का ज़िक्र है वह उन दोस्तों का है जो स्कूल में अपनी सत्ता के झण्डे शरारत और अनुशासन तोड़कर गाड़ता है। क्या समूह की पहचान और संस्कृति, बच्चों के व्यवहार के साथ-साथ इनके तालीम पाने और ज़िन्दगी से जुड़े फ़ैसलों को भी मुतास्सिर करती है?

यहां जिन बच्चों का ज़िक्र है वह आठवीं से बारहवीं तक के हैं। मुझे इन्हें देखने-समझने के मौक़े छोटे बच्चों के मुक़ाबले में ज़्यादा मिल पाए हैं।

### बच्चों के समूहः खट्टे, मीठे, नमकीन-चटपटे

बच्चों की और उनके छोटे-बड़े समूहों की विभिन्नता को लफ़्ज़ों में क़ैद करना मुश्किल है। फिर भी, यहां कोशिश है कि मोटे तौर पर शनाख़्त किए गए समूहों के बारे में बातचीत की जाए। अध्यापकों के हिसाब से हर कक्षा में कम से कम तीन तरह के समूह ज़रूर पाए जाते हैं। एक, जिनके लिए ज़िन्दगी की जद्दोजहद से दूर, ज़िम्मेदारियों के एहसास से परे स्कूल एक मस्ती करने की जगह है। पढ़ाई तो आनुषंगिक है। स्कूल आने का मतलब है ग्रुप से मिलना, मस्ती करना, खेलना, लड़ना, दीवारें फांदकर बाहर जाना, खाना-पीना और लौटकर वापस भी आ जाना। दूसरा, जो पढ़ाई के अलावा मस्ती या कहना चाहिए कि मस्ती के अलावा पढ़ाई की तरफ़ कभी न कभी रुख़ कर लेता है। तीसरा, वह जिसे यह दोनों ही समूह 'बेचारा' क़रार दे चुके हैं। यह बेचारे सारी कमियों, परेशानियों के बावजूद पढ़ाई-लिखाई की पुरज़ोर कोशिश करते हैं। मैं भी यह मानती हूं कि यह तीन समूह तो कक्षाओं में मौजूद हैं ही, कम से कम जिन कक्षाओं को कुछ क़रीब से जानने का मौक़ा मिला, उनमें तो मौजूद हैं। बच्चे, ख़ुद भी, अपने-आपको इन समूहों में बंटा देखते हैं। जैसे कक्षा दसवीं ए में शरारती-मस्त बच्चों का एक समूह, एक दीवार से लगी डैस्क की क़तार में बैठता है। दूसरा, मस्ती-संजीदगी वाला समूह दूसरी दीवार से लगी क़तार में बैठता है। बीच की क़तार में तीसरा समूह बैठता है। एक दीवार से लगे डैस्क कुछ टूट गए थे। क्योंकि दूसरी दीवार से लगे कुछ डैस्क ख़ाली पड़े थे, टीचर ने तकलीफ़ से बैठे बच्चों से वहां बैठने

के लिए कहा। जवाब मिला, ''वहां कैसे बैठ जाएं, हम हिन्दुस्तान-पाकिस्तान हैं।'' टीचर ने हंसते हुए पूछा, ''अगर तुम लोग हिन्दुस्तान-पाकिस्तान हो तो यह बीच की क़तार किसकी है?'' जवाब हाज़िर था, ''मैम, यह तो बेचारा कश्मीर है, हाल बुरा है।''

ज़्यादा तफ़सील से और पहले बात मस्तानों की करेंगे। वैसे इन अलग-अलग समूहों की सीमाएं इतनी जुदा भी नहीं है कि एक-दूसरे के काम का अंदाज़ और व्यवहार का कभी हिस्सा ही न बनें! क्लास चलने के दौरान आवाज़ें निकालना, जुमले कसना, एक-दूसरे पर सामान उछालना और टीचर को परेशान करके मज़े लूटना इस समूह के दस्तूर में शामिल है। हां, किस टीचर की क्लास में 'फ़न' का मौक़ा मिलता है, यह देखना होता है। कई ज़्यादा सख़्त समझे जाने वाले पुरुष और महिला अध्यापकों का मानना है कि, ''यह तो टीचर पर निर्भर है कि वह क्लास को कैसे कन्ट्रोल करते हैं, हमारी क्लास में तो कोई यह सब करके दिखाए तब मानेंगे।'' एक-दो टीचर का यह भी मानना है कि, ''अगर आप अच्छा पढ़ाते हैं तो बच्चे पढ़ते हैं, यह तो उनकी क्लास में होता है जो लोग न तो ठीक से पढ़ाते हैं, न वक़्त पर पहुंचते हैं।'' बहरहाल, बहुत से टीचर इनके व्यवहार और बरताव से परेशान नज़र आते हैं। इनकी शरारत का कुछ मज़ा तो मैंने भी चखा है।

इस समूह में ज़्यादातर वह बच्चे शामिल हैं, जो माली ऐतबार से कुछ बेहतर हैं। अब बाजार कभी गर्म है तो कभी ठण्डा। अपने वालदैन के काम में मदद तो करते हैं लेकिन ज़्यादातर बच्चों पर कमाई की ज़िम्मेदारी मुकाबलतन कम है। यह भी कुछ निश्चित-सा ही है कि स्कूल पूरा करने के बाद इन्हें अपना छोटा-मोटा कारोबार ही सम्भालना है। हां, समूह में कई ऐसे बच्चे भी शामिल हो ही जाते हैं जो ज़रूरतन काम करते हैं। कक्षा में यह बच्चे अपने रंग-ढंग से भी पहचाने जा सकते हैं। बालों के ऐसे स्टाइल और रंग देखने को मिलते हैं जो बॉलीवुड को भी मात दे दें! कई के बाल लम्बे 'रेज़र कट' हैं और साथ ही रंगे हुए भी दिखते हैं। ग़ौर से देखें तो कान में बुन्दा भी नज़र आ जाएगा। पतलून चुस्त कसी हुई, शर्ट के ऊपर के बटन खुले हुए और कॉलर खड़ा हुआ। हाथ में मोबाइल फ़ोन जिस पर 'काम' क्लास के बीच में भी जारी रहता है। कई बार अनुशासन कमेटी ने मोबाइल पकड़े तो पता चला उनमें अश्लील फिल्में और चित्र डले हुए हैं। समूह के कुछ सदस्यों को इन ज़ाहिरी निशानियों और स्टाइल की भी ज़रूरत नहीं है। ऊंचे फ़नकार हैं! इलाक़े के हैसियत वाले लोगों में उठना-बैठना है, इज्ज़त, रुत्बा है। जुगाड़ जानते हैं, जिसके लिए जाने-माने जाते हैं।

वैसे दिखावे और शो बाज़ी में इस समूह के बच्चे आगे-आगे सही, बाक़ी दो समूह भी बस कुछ ही पीछे होंगे। बस ज़रा लपकें तो साथ ही होंगे। किसी तक़रीब में रंग-ढंग देखने वाले होते हैं। जैसे हाल में हुई बारहवीं जमात की विदाई तक़रीब। लगता था कि लड़के और लड़कियां सीधे पार्लर से चले आ रहे हैं। बाल फ़िल्मी अन्दाज़ से कटे-रंगे हुए, मेकप और कपड़े नायाब! एक दिन की 'ईद' में न जाने कितने रुपयों का ख़र्चा कर डालते हैं। कुछ बच्चे जो अब स्कूल छोड़ चुके हैं, उनसे इस सिलसिले में बात हुई। उनके हिसाब से दिखावा सिर्फ़ 'ब्रेडेंड' कपड़ों का ही नहीं है, अगर इत्तेफ़ाक़ से कहीं बाहर खाने-पीने जाते हैं तो सामने वाले को नीचा दिखाने और अपने को बड़ा जताने के चक्कर में बिस्लेरी से कम में बात नहीं करते। उनके हिसाब से और चीज़ों के अलावा, ''स्कूल ने हमें इण्डिया गेट जाकर लड़कियां तकने की, ब्रिटिश काउंसिल में घुसने की, कनॉट प्लेस में घूमने की हिम्मत तो दे दी है।'' साथ ही, ''अंग्रेज़ी के दो लफ़्ज़ सिखा दिए हैं ताकि मैक्डोनल्ड में जाकर बरगर मांग सकें''। ''ज़बान में भी फ़र्क़ आया है, अबे-तबे से बात नहीं करते हैं''। यह सब 'बड़ों' की दुनिया के ऊपरी रंग ही सही कुछ लम्हों की ख़ुशी और नशा तो बख़्शते ही हैं। यह सवाल तो अपनी जगह क़ायम है कि स्कूल ने इनकी ज़िन्दगी में तथा सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक हालात में क्या कोई अहम भूमिका निभाई है?

क्लास चलने के दौरान आवाज़ें निकालना, जुमले कसना, एक-दूसरे पर छोटी-मोटी चीज़ें जैसे चॉक, पेन, पेन्सिल उछाल देना; यह सब मज़े लूटने का हिस्सा है। चाहे आवाज़ें निकालें या किसी का बैग छुपा दें, मजाल कि कोई उनका नाम ले ले। अपनी शामत बुलानी है क्या! कई बार आवाज़ें और जुमले जो सुनाई पड़ते हैं, उनमें अश्लील इशारे होते हैं। जैसे एक टीचर बोर्ड पर लिखने लगीं, तभी एक बच्चे ने बीच की क़तार में बैठे 'बेचारे' बच्चे पर ताना कसा, ''अबे तेरा चुसना सूख गया है क्या?'' सभी साथी हंस पड़े। टीचर को अंदाज़ा-सा हुआ कि यह कोई अश्लील लफ्ज़ है। डांटकर पूछा तो जवाब मिला, ''नहीं मैडम, कैसी बातें करती हैं, इसका मतलब तो चूसने वाली चीज़ से है।'' इस 'मासूमियत' पर क़हक़हे क्लास

**फ़राह फ़ारूक़ी**

दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्रीराम कॉलेज में बीएलएड कोर्स से जुड़ी रही हैं। आजकल जामिया मिलिया इस्लामिया के शिक्षा विभाग में एसोशियट प्रोफेसर हैं और दिल्ली एजुकेशन सोसाइटी से संबद्ध हैं।

में गूंज गए। टीचर खिसया गईं और क्लास छोड़कर बाहर चली गईं। ओहदे से जुड़ी सत्ता को ललकारने और हिला-डुला पाने का मज़ा ही कुछ और होता है। जैसे हमारे बिलाल मियां ने अंग्रेज़ी की एक कम उम्र अध्यापिका से 'वरजिनिटी' और 'इनटरकोर्स' के मायने पूछ डाले। अध्यापिका को इस उम्र के बच्चों के साथ काम करने का अभी कुछ कम ही अनुभव है, मामले की नज़ाकत को सम्भाल नहीं पाईं, परेशान हो गईं। सबने मज़े लिए। इस बच्चे ने सिर्फ़ मज़े लेने के मक़सद से ऐसा नहीं किया बल्कि यह उनकी नाराज़गी का भी इज़हार था। टीचर ने लगातार दो दिन, स्कूल देर से पहुंचने पर उनकी ग़ैर-हाज़िरी रजिस्टर में दर्ज कर ली थी। क्लास के बाहर भी उन टीचर को टॉयलेट जाता देखकर ताने कसे, ''अरे आपके घर में टॉयलेट नहीं है क्या?'' उनके चलने के अंदाज़ पर भी कमेन्ट किया, ''यह चौबीस-चौबीस करके क्यों चल रही हैं?'' अनुशासन कमेटी ने बच्चे को एक हफ़्ते के लिए स्कूल से बेदख़ल कर दिया।

सत्ता को ललकारने और मज़े लेने का सिर्फ़ अश्लील अंदाज़ ही नहीं है, कई तरह के नए, नवेले, पुराने तरीक़े शामिल हैं। अब मैनेजर क्लास में हों तो दूसरा अंदाज़ अपनाना ही पड़ता है। यह तो जान ही गए हैं कि मैनेजर का स्कूल के काफ़ी बच्चों से एक गहरा रिश्ता है और अकसर बातचीत होती है। इस व्यवहार को जो उनकी टीचर से अलग भी है, 'नरमी' मान लेना लाज़मी था। सोचा ज़रा मैनेजर को भी मस्ती के जाल में फंसाया जाए। एक क्लास में टीचर के साथ मिलकर, मैं बच्चों को एक प्रोजेक्ट के बारे में समझा रही थी। सब कुछ संजीदगी से चल रहा था कि अचानक एक कोने से आवाज़ आई, ''असलामुअलैकुम, मैम।'' काम रोककर पूछा,

''क्या हुआ, यह बीच में सलाम किस बात का है?''

उसने कहा, ''आपने जवाब तो दिया नहीं''।

मैंने कुछ दृढ़ता से कहा, ''ठीक है, 35 मिनट का क्लास है, 60 बच्चे यहां मौजूद हैं। पहले हर एक से दुआ-सलाम तो कर लूं, माफ़ करना भई!'' इस पर भी कोशिश जारी थी।

''मैम, फिर भी सलाम का जवाब तो देना चाहिए ना।'' तब मैंने ज़रा नागवारी और सख़्ती से कहा, ''कहो तो आगे बात करूं, तुम से सलाम-दुआ बाद में हो जाएगी।'' शायद कुछ समझ में आया, कहा, ''जी मैम, बिल्कुल, जी, इनशाअल्लाह।'' सच कहूं तो यह एहसास कि मुझे भी मज़ाक का मोहरा बनाया जा रहा है, कुछ हिला देने वाला था। इसी तरह सालाना जलसे के दिन मैं पीछे, बच्चे जहां बैठे थे वहां खड़ी थी। अचानक एक ऊंची आवाज़ आई, ''और क्या हाल हैं, मैम''। मुड़कर देखा तो सब 'मासूम' बैठे टिकटिकी बांधे, प्रोग्राम देख रहे थे। पूछना कि किसने आवाज़ कसी, बेकार था। 'खेल' का दस्तूर है कि किसी का नाम न बताया जाए।

जहां क्लास की चंद लड़कियों के सामने दिखावा और मर्दानगी का मुज़ाहिरा दस्तूर है, वहीं लड़कियों से दोस्ती की ख़्वाहिश लड़ाई और दुश्मनी की वजह भी बनती है। कई बार दो कक्षाओं के बीच लड़ाई होने पर अलग-अलग समूह एक साथ भी हो जाते हैं और वफ़ादारी अपनी क्लास की तरफ़ दिखाई पड़ती है। या फिर लड़ाई दो कक्षाओं में ताक़तवर समूहों के बीच होती है, बाक़ी बच्चे थोड़ा दूर-दूर ही रहते हैं ताकि घुन के साथ गेहूं भी न पिस जाए। हाल में बारहवीं कॉमर्स के एक विद्यार्थी, बारहवीं विज्ञान की एक लड़की के 'इश्क़' में गिरफ़्तार हो गया। 'इश्क़' एक तरफ़ा था। लड़की को काफ़ी पैग़ाम भेजे, फ़ोन नम्बर की दरख़ास्त की लेकिन मोहतरमा पिघली नहीं। सारे साथी, आशिक़ दोस्त की हालत से काफ़ी परेशान थे और अकसर सारा ग्रुप लड़की की क्लास के बाहर खड़ा नज़र आता था। लड़की की क्लास के बच्चे ख़ासतौर से लड़के इस बात से नाख़ुश थे। एक जनाब 'अबला' के बचाव में आशिक़ से लड़ पड़े। दोनों में ख़ून-ख़राबा हुआ और लड़की के हिमायती लड़कों ने पुलिस को फ़ोन कर दिया। चश्मदीद गवाहों ने अपनी-अपनी क्लास के साथियों की तरफ़ वफ़ादारी का सबूत देते हुए, उनकी तरफ़दारी की। किसी तरह मामला स्कूल अनुशासन कमेटी ने निपटाया। इसी तरह दसवीं क्लास के एक लड़के ने एक लड़की से बात करने की कोशिश की। दूसरी क्लास के लड़के ने देखा तो मना किया कि जब वह बात नहीं करना चाहती तो क्यों ऐसा किया जा रहा है। बात बढ़ गई, हाथ उठ गया जबकि मारा नहीं। दूसरे दिन का नज़ारा मेरा आंखों देखा है। सालाना जल्से की तैयारी के चक्कर में बरामदे में काफ़ी भीड़ थी। मैं और एक साथी टीचर क्योंकि एक खम्बे की आड़ में थे, यह बच्चे हमें नहीं देख पाए। अदनान, नजीब की तरफ़ बढ़े और कहा, ''क्यों बे, क्या कह रहा था तू, ज़्यादा बोलता है। तेरी बहन लगती है क्या?'' अदनान का इतना कहना था कि उसके दो-तीन साथी जेबों में हाथ डाले आगे बढ़े और नजीब को दीवार से सटा दिया। उसे घेरकर आसपास खड़े हो गए। मेरे साथ खड़ी टीचर भी आगे बढ़ीं और मामला गरम देखकर बाक़ी बच्चे एक-दूसरे टीचर को भी बुला लाए। सुलह-सफ़ाई करवाई गई लेकिन मामला यहां ख़त्म नहीं हुआ। फ़ोन करके भाइयों और रिश्तेदारों को बुला लिया गया, जो छुट्टी के बाद नजीब को पीटने के इंतज़ार में थे। प्रिंसिपल साहब को पता चला और उन्होंने बीच-बचाव भी किया, लेकिन मामला हमेशा के लिए ख़त्म हो गया इसका मुझे इल्म नहीं है। इस तरह का दबदबा, ज़्यादातर, उन बच्चों का है जो इस इलाक़े में कई पुश्तों से रहते चले आ रहे हैं। जो बच्चे और उनके परिवार कुछ ही साल पहले इस इलाके में

आस-पड़ोस के शहरों और राज्यों से आए हैं, उनका ऐसा दबदबा नहीं है। जबकि कई बार वह भी इन समूहों का हिस्सा बन जाते हैं। बल्कि यूं भी कहा जा सकता है कि यह अरमान रखते हैं कि ऐसे किसी ताक़तवर समूह का हिस्सा बन पाएं।

इज़हारे 'मोहब्बत' कई बार कम उम्र की टीचर से भी कर दिया जाता है। वेलनटाइन डे के दिन एक जनाब ने टीचर को गुलाब का फूल पेश किया। टीचर ने ले लिया और स्टाफ़ रूम में ले जाकर मेज़ पर रख दिया। थोड़ी देर में इशारे से टीचर को बुलाया और कहा, ''उस गुलाब की दो पंखुड़ियों पर कुछ लिखा है, उन्हें तोड़ दीजिएगा।'' वापस जाकर उन्होंने देखा तो एक पंखुड़ी पर 'आई लव यू' लिखा था और दूसरे पर एक अश्लील चिह्न था।

यह समूह पढ़ाई में ज़रा संजीदा और कोशिश करने वाले बच्चों को तो 'बेचारा' क़रार दे चुका है। लड़कियां अकसर इनसे दूर-दूर रहने की कोशिश में रहती हैं। क्योंकि ज़्यादातर मेहनती हैं तो कुछ पूछना-पाछना होता है तो 'बेचारों' से ही पूछती हैं। लड़कियों की ज़बान में, ''बाक़ी तो इस लायक़ हैं नहीं, कभी कुछ पूछना होता है तो क्लास के शरीफ़ बच्चों से पूछ लेते हैं। लेकिन, मैम, तब उनकी भी आफ़त आ जाती है। उस ग्रुप के लोग उन्हें चिड़ाते हैं। 'देखो, इन्होंने पिल्ले पाल रखे हैं, एक आवाज़ में दौड़े आते हैं।'' लड़कियों के हिसाब से जब ज़्यादा कहा - सुना जाता है तब 'शरीफ़' बच्चे भी अलग-थलग रहना ही पसंद करते हैं और वह ख़ुद भी सोचती हैं, ''क्या फ़ायदा हमारी वजह से इनकी बेइज़्ज़ती हो।'' वैसे भी लड़कियां आपस में ही रहना 'पसन्द' करती हैं। इसी को नेकी और शराफ़त मान लिया गया है। परिवार हो या फिर स्कूल उन्हें लड़कों से दूरी बनाए रखने के इशारे ही नहीं बल्कि हिदायत भी देता है। इस उम्र में एक-दूसरे में एक रुचि और मोह तो होता ही है। जब किसी लड़के-लड़की की ख़ास दोस्ती हो जाती है तो उसमें लड़की की ज़्यादा 'ग़लती' क़रार दे दी जाती है। क्योंकि लड़कों के लिए लड़कियों की तरफ रुझान होना सामान्य मान लिया गया है। कभी ज़िक्र करूंगी कि हमारी अनुशासन कमेटी ऐसे हालात में किस तरह के फ़ैसले ले डालती है। काफ़ी वालदैन भी हमारे स्कूल के लड़कों की तरफ़ इशारा करते हुए कहते हैं, ''भई, माहौल इतना ख़राब है कि बच्चियों को भेजते हुए डर लगता है।'' इसका ज़िक्र तो मैंने किया ही है कि जब लड़कियां 'सीधे-सादे' 'शरीफ़' (यह लड़कियों की शब्दावली है) लड़कों से बात करती हैं तो बाक़ी उन लड़कों को 'पिल्ले', या 'छक्के' जैसे ख़िताबों से नवाज़ते हैं। वैसे भी शरारती बच्चों का, पढ़ाई-लिखाई में संजीदा बच्चों को देखने का एक अलग नज़रिया है। यह उन्हें कई मायनों में अपने से कमज़ोर और कमतर समझते, महसूस कराते हैं। इन्हें, उनमें कुछ 'मर्दानगी' की कमी-सी महसूस होती है जो इनमें भरपूर है उन्हें 'लड़की', 'छक्का', 'बच्चा', 'मासूम' आपा-जान जैसे ख़िताब दिए जाते हैं। मेरे ही सामने एक 'साहब' ने दूसरे बच्चे के मुंह पर हाथ फेरा और पुचकारा, ''अरे! मुन्ने, क्या बात समझ में आई''। वह बच्चा शर्मिंदा-सा सर नीचा करके बैठ गया। लड़ाइयां तो वैसे खेल का और दस्तूर का हिस्सा हैं। लेकिन कब मस्नूई-सी लड़ाई, संजीदा हाथा-पाई की शक्ल ले ले पता ही नहीं चलता। कई बार 'लड़ाई' में ऐसे दाव-पेच देखने को मिलते हैं और साथ ही जिस तरह की आवाज़ें निकाली जाती हैं लगता है जैसे बॉलीवुड से दृश्य उधार मांगा है। एक-दूसरे पर बैग फेंकने, सामान छुपाने और छोटी-मोटी छेड़-छाड़ से शुरुआत होती है लेकिन अनजाम ख़ौफ़नाक भी हो जाते हैं। जबकि गाली-गलौज रोज़मर्रा की बातचीत का हिस्सा है, लेकिन अकसर यह संजीदा लड़ाई की वजह भी बन जाती है। पूछो तो पता चलता है, ''मैम, इन्होंने मां-बहन की गाली दी थी इसलिए हाथ उठ गया वरना आप किसी से भी पूछ लीजिए हम ऐसी लड़ाई नहीं करते''।

कभी एक टीचर के क्लास छोड़ने और दूसरे के पहुंचने में वक़्फ़ा होता है, उसी दौरान हाथापाई ख़ून-ख़राबे तक भी पहुंच जाती। इस वजह से कुछ टीचर क्लास में वक़्त पर पहुंचना चाहते हैं ताकि चोट लगने की ज़िम्मेदारी उन पर ना थोप दी जाए।

इस मिले-जुले से खेल और लड़ाई की नज़र स्कूल की सम्पत्ति और सामान भी होता है। बच्चों को, जिसमें कई बार तीनों समूह के बच्चे शामिल होते हैं स्कूल का सामान तोड़ने, ख़राब करने में कुछ ख़ास ही लुत्फ़ आता है। क्योंकि एक-दूसरे को तंग करने के लिए और यूंहीं भी पंखे के परों पर बैग लटका दिए जाते हैं तो कई कक्षाओं में पंखे टेढ़े-मेढ़े, मुड़े हुए नज़र आते हैं। ट्यूब लाइट तोड़ दी जाती हैं, कूड़े-दान 'फुटबाल' खेलने में खर्च हो जाते हैं। बुलेटिन बोर्ड का कपड़ा फटा मिलता है।

## कुछ और ख़ासियतें

नीचे दी गई तफ़सील शायद तीनों समूहों के बच्चों का मिज़ाज और व्यवहार दर्शाती है।

अनिश्चित हालात, ग़ैर-बराबरी और तहफ़्फ़ुज की कमी एक बड़ी वजह महसूस होती है, बच्चों में इज़्ज़त और बेइज़्ज़ती का आख्यान आम होने की। यह इनके अपने बारे में मर्दानगी से जुड़ी धारणा भी मालूम होती है। ख़ैर, यह भी सच है कि स्कूल का स्टाफ़ चाहे इनका ख़याल तो कर ले, लेकिन उस इज़्ज़त से तो यह महरूम हैं ही जिसके यह मुस्तहिक़ हैं और इन्हें इसका शदीद एहसास भी है। बच्चों में आपसी तकरार की वजह तो 'बेइज़्ज़ती' महसूस करना

होती ही है इसकी चपेट में बच्चों और टीचर के बीच के ताल्लुक़ात भी आ जाते हैं।

मैं : पढ़ने में क्या पसन्द है।

बच्चा : बस सब ठीक ही लगता है, पहले उर्दू पसन्द थी, लेकिन अब नहीं रही

मैं : क्यों

बच्चा : जब मैं आठवीं में था, तब मुईन सर ने मेरी इतनी बेइज़्ज़ती की थी। तब से मैंने उर्दू पढ़ना छोड़ दिया।

मैं : क्या हुआ था?

बच्चा : हम सब कॉपियां चैक करवा रहे थे। मैंने कुछ ग़लत लिखा था। सर ने ऐसे करके सबको मेरी कॉपी दिखाई और मज़ाक उड़ाया। सभी मुझ पर हंस पड़े।

मै : तुम्हारा ही तो नुक़सान हुआ। एक सबजैक्ट जो तुम्हें पसन्द था वह पढ़ना ही छोड़ दिया।

बच्चा : ख़ैर, अब मुझे पसन्द भी नहीं रहा, तब ही से मैंने सोच लिया था कि मुझे उर्दू नहीं पढ़नी है और मैम, सर को ऐसी बेइज़्ज़ती भी तो नहीं करनी चाहिए थी न।

इसी तरह एक दूसरे जनाब ने बताया, ''वह मैम ऐसे बात करती हैं कि बेइज़्ज़ती कर देती हैं, मैं कहता रहा वैसे ही क्लास के बाहर नहीं आया हूं, प्रिंसिपल सर ने बुलाया है, लेकिन एक थप्पड़ मुंह पर मार ही डाला''।

बेइज़्ज़ती होती भी है और इसका एक हावी एहसास भी है। साथ ही स्कूल पर और स्कूल से जुड़े लोगों पर भरोसा कुछ कम ही नज़र आता है। जो बच्चे ज़्यादा दिलेर हैं, वह तो धमकी के अन्दाज़ में किसी ऐसी टीचर से जिसे वह बेज़रर समझते हैं, पूछ भी डालते हैं, ''मैम, छुट्टी के दिन, शादियों के लिए बाहर का मैदान किराए पर देकर स्कूल इतना पैसा कमाता है, आख़िर जाता कहां है? अरे मैम हमें सब पता है। स्कोलरशिप का पैसा अभी फूलचन्द स्कूल में बटा है, हमारे स्कूल में भी आया होगा। उसका हुआ क्या? आर.टी. आई. डालनी पड़ेगी।'' टीचर भी झेंप गईं, कहा, ''ज़रूर डालो''।

इसी तरह कई साल पहले काफ़ी बच्चे ग्यारहवीं क्लास में फ़ेल हो गए। एक दिन फ़ोन आया कि, ''मैम, हमें पता चला है कि हमारी क्लास के बच्चों ने पास होने के लिए पैसे दिए हैं।'' क्योंकि अचानक फ़ोन आया था और मैं ऐसे फ़ोन के लिए तैयार-सी भी नहीं थी। मैंने समझाया कि कोई टीचर ऐसा काम नहीं कर सकता, सब अफ़वाह है। बात यहां पर ख़त्म नहीं हुई। बच्चों ने स्कूल मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन को ख़त लिखा, जिसकी कॉपी उन्होंने शिक्षा मंत्री और शिक्षा विभाग को भी भेजी। साथ ही उर्दू के कई अख़बारों में ख़बर भी छपवाई कि हमारे स्कूल के उस्तादों ने पैसा खाकर बच्चों को पास करवाया है। इन्क्वाइरी कमेटी बिठाई गई। यह तो पता ही था कि ऐसा कुछ नहीं हुआ। भई, हमारे बहुत सारे बच्चे बस किसी तरह पास ही हो पाते हैं। नम्बर इतने कम रहते हैं कि ज़रा भी और कम हुए तो फ़ेल हो ही जाएंगे। अगर कुछ मेहनत कर लेते हैं तो लाइन के दूसरी तरफ़ होते हैं। ऐसे में यह शक कहां जायज़ है कि दोस्त पास कैसे हो गया और मैं कैसे रह गया। बत्तीस और चौतीस फ़ीसदी में नम्बरों के हिसाब से क्या फ़र्क़ है। हां, एक 'फ़ेल', दूसरा 'पास' ज़रूर है।

शक-सुबह होने पर हमारे बच्चों की कारिस्तानी तो आपने देखी। जी, हमारे बच्चे मोल-भाव और समझौते भी खूब जानते हैं। बहुत कुछ करोबारी ज़िन्दगी की जद्दोजहद और बड़ों का साथ सिखा देता है। यह भी पहचान है कि किस से किस तरह और कैसे 'काम निकालना' है। जैसे हमारे गणित के उस्ताद तबियत ख़राबी की वजह से लम्बी छुट्टी पर चले गए। दसवीं जमात के शाहनवाज़ लगातार फ़ोन करते थे यह बताने के लिए कि उन्हें कितनी दुश्वारी का सामना करना पड़ रहा है। जल्दी इन्तेज़ाम न होने की वजह से दो सेक्शन को एक साथ बिठाया। तब भी फ़ोन जारी रहे, परेशानी समझाई कि किस तरह उर्दू और हिन्दी में अल्फ़ाज़ मुख़तलिफ़ हैं और इस इन्तेज़ाम से कुछ ख़ास फ़ायदा नहीं है। ऊपर से दूसरे सेक्शन के बच्चे इतने शरारती हैं कि उन्हें पढ़ने ही नहीं देते हैं। लगातार पंद्रह दिन शाहनवाज़ साहब ने इतने फ़ोन किए कि उनका नम्बर देखकर मैं डर जाती थी। ख़ैर, हाथ-पैर मारे और गणित के टीचर का इन्तेज़ाम भी किया। फ़ोन आने बन्द हो गए। बस, एक बार अपने चच्चा की सिफ़ारिश के लिए आया था, ''मैम, स्कूल में ड्रॉइंग के टीचर की जगह ख़ाली है और मेरे चच्चा ड्राईंग में बहुत अच्छे हैं।'' काफ़ी बार बच्चों ने अतिरिक्त क्लासें लगाने के लिए भी अर्ज़ी दी है।

विकास के नाम पर स्कूल जो मामूली-सी फ़ीस लेता है, काफ़ी बच्चे वह फ़ीस देने में असमर्थ हैं। (यहां पर याद दिलाना ज़रूरी है कि हमारा स्कूल सरकारी मदद से चलता है और स्टाफ़ के वेतन के 5 फीसदी का इन्तेजाम मैनेजमेंट को करना होता है)। काफ़ी बच्चे फ़ीस माफ़ी के लिए अर्ज़ी देते हैं जो ज़्यादातर माफ़ भी कर दी जाती है। कुछ बच्चों का टीचर से बात करना काम नहीं आया तो उन्होंने इस सिलसिले में मुझसे अपनी मजबूरी बयान की। कहने के अन्दाज़ को लफ़्ज़ों में बयान करना मुश्किल है। किसी सिलसिले में मुझे दसवीं क्लास के बच्चों से मिलना था, जिसकी ख़बर उन्हें पहले से थी। मिलकर मैं जाने लगी तो दो बच्चों ने मुझे रोका, बाक़ी

बच्चे क्लास के बाहर निकल गए थे। इधर-उधर की बातें की, फिर जमील ने मुझे एक डायरी पेश की जो उसके कारख़ाने में बनी हुई थी। मैंने लेने से इंकार किया तो कहा, ''अरे मैम, इतनी सारी बनती हैं, एक-आध पीस बच जाता है जो दोस्तों को, जानने-मिलने वालों को दे देते हैं।'' फिर धीरे से कहा, ''मैम एक बात कहनी थी, पापा पर उधार चढ़ गया है। काम भी मंदा चल रहा है। छः महीने की फ़ीस देना मुश्किल हो रहा है, क्या कुछ हो सकता है?'' फ़हीम ने भी अपनी बात कही और फिर कहा, ''मैम, आप देख लीजिएगा।'' अपनी अना को बरक़रार रखते हुए, इलतिजा का यह अंदाज़ हिला देने वाला था। बच्चे टीचर, प्रिंसिपल, मैनेजर से मोल-भाव करने की कोशिश तो करते ही हैं।

इसी तरह जब अफ़साना ने मुझसे सिफ़ारिश की तो मैंने उससे कहा कि तुम मुझे अर्ज़ी लिखकर दो कि मैं क्यों तुम्हारी बात मानूं। दरख़ास्त जो उसने वहीं बैठकर लिखी उसमें इतनी खूबसूरत तफ़सील थी कि मुझे अध्यापकों की शिकायत कि हमारे बच्चे अच्छा लिख नहीं पाते हैं, हैरान कर गई। एक छोटा अंश यहां पेश हैः

> ''कभी-कभी इंसान को वो काम भी करने पड़ते हैं जो वो नहीं करना चाहता और कभी-कभी समय ऐसा भी आता है कि वह चाहते हुए भी उन कामों को नहीं कर पाता जिन्हें वह शिद्दत से करना चाहता है। और यह भी सत्य है कि शिद्दत से किया गया काम कभी असफ़ल नहीं रहता और उसके रास्ते में कोई नहीं आ सकता।... जब किसी परिवार में कोई शिशु जन्म लेता है तो हर्षो-उल्लास का वातावरण होता है। परन्तु ऐसा दोनों स्थितियों में संभव हो यह आवश्यक नहीं। अगर तो वह लड़का है तो सब ठीक, अगर वह लड़की होती है तो ग़रीबी में आटा गीला वाली बात हो जाती है। जब एक लड़की इस धरती पर जन्म लेती है तो वहीं से उसका संघर्ष भी आरंभ हो जाता है... मैं भी एक लड़की हूं और आप ही के स्कूल में 11 वर्षों से पढ़ रही हूं। घर में मां-बाप के अलावा 5 भाई और 4 बहनें हैं। तीन भाइयों की शादी हो चुकी है और वह अपनी अलग गृहस्थी बसाए हैं। पिता एक धागे की दुकान में कार्यरत हैं और बाक़ी दो भाई उनकी मदद करते हैं। काम से जो पैसे आते हैं वह तो सब घर ख़र्च में ख़र्च हो जाते हैं। यहां तक तो सब ठीक है लेकिन बात जब पढ़ाई की आती है तो पिता का उसमें कोई सहयोग नहीं रहता। मेरी मां (अम्मी) मुझसे बहुत प्यार करती हैं और उन्हीं की वजह से मेरी इतनी पढ़ाई भी संभव हो पाई है। मेरे अब्बा के व्यवहार से मुझे ऐसा लगता है कि उन्हें मैं पसन्द नहीं हूं या फिर कहें कि उन्हें लड़कियां पसंद नहीं हैं और वो भी शायद इसलिए क्योंकि उनका मानना है कि लड़कियां एक बोझ होती हैं और जब उनका विवाह ही करना है तो फिर पढ़ाई में पैसा क्यों बर्बाद करना। और शायद यही कारण है कि वह मुझे पढ़ाई के लिए ख़र्चा नहीं देना चाहते। मेरी बाक़ी बहनों की पढ़ाई भी इसी कारण पूरी नहीं हो पाई और वह भी अपना मुंह बंद कर चुपचाप सब सह गईं लेकिन मैं नहीं चाहती कि मेरे साथ भी ऐसा हो।... कुछ वर्षों से मैं पढ़ाई पूरी कर पा रही थी पर अब मेरी मां इसका ख़र्चा नहीं उठा पा रही है और स्कूल की फ़ीस भी बहुत बढ़ गई है जिस कारण बोझ और भी बढ़ गया है। मेरी बहनें तो पढ़ाई पूरी नहीं कर पाईं लेकिन मैं करना चाहती हूं और शायद वो ऐसा इसलिए भी नहीं कर पाईं क्योंकि उनके पास आप जैसा सहारा नहीं था। आप मेरे लिए उम्मीद की एक किरण हैं जो मेरे जीवन को उज्जवल कर सकती है। मैं यह आशा रखती हूं कि मेरी उम्मीद की यह किरण मेरे जीवन में प्रकाश भरने के लिए काफ़ी है।
>
> मेरा बचपन से सपना था कि मैं अपनी पढ़ाई पूरी करके अपने पिता को यह एहसास दिला सकूं कि लड़कियों का जन्म केवल विवाह करने और विदा करने के लिए ही नहीं होता बल्कि वह भी आर्थिक सहायता करने में सक्षम होती हैं। मुझे इस बात का ज्ञान भी है कि पिछले कुछ वर्षों में मुझे मेरी सम्पूर्ण शिक्षा के लिए समय नहीं मिल पा रहा है जिस कारण मैं इतना अच्छा नहीं कर पा रही हूं जितना मुझमें करने की योग्यता है लेकिन अभ्यास करने से ही तो सफ़लता प्राप्त होती है और यह भी सत्य है किः
>
> करति-करति अभ्यास के,
>
> जड़मति हौति सुजान!
>
> रस्सी आवति जात है
>
> सिल पर परति निसानि!!
>
> जब आपका समर्थन मुझे प्राप्त होगा, मेरी शिक्षा पूरी करने के लिए तो मुझ पर पढ़ाई के प्रति ज़िम्मेदारी और भी बढ़ जाएगी और मैं भी अभ्यास से स्वयं को कुशल बनाने का प्रयास अवश्य करूंगी।

मेरी पढ़ाई पर कोमा तो अवश्य लग सकता है, अगर आपका सहयोग न मिला तो लेकिन मैं इस पर पूर्ण विराम कतई नहीं लगने दूंगी, चाहे भले ही कितना ही संघर्ष मुझे इसके लिए करना पड़े। कोई व्यक्ति जीवन में उसी का सहयोग मांगता है जिसे वह अपना मानता है और मैं तो आपको अपने हृदय की गहराइयों से अपना मानती हूं और यही कारण है कि मैंने मदद के लिए हाथ बढ़ाए।

अगर मैं अपनी पढ़ाई पूरी करती हूं तो इससे मुझे तो मेरा उद्देश्य प्राप्त होगा ही, साथ ही, मैं अपनी मां को गर्व का अनुभव भी करा पाऊंगी और अपने पिता को भी यह बात साबित कर पाऊंगी कि शिक्षा में कितना बल होता है।''

ऐसी अर्ज़ी, जिसमें अपने परिप्रेक्ष्य और सपने का तार्रुफ़ देते हुए एक जायज़ इलतिजा हो, यह एहसास और इक़रार हो कि फ़िलहाल उनका उम्मीद जितना शैक्षिक स्तर नहीं है, आइन्दा बेहतर काम करने का वादा हो, साथ ही सहारे की दरख़ास्त और उम्मीद के चिराग़ भी हो, मैंने तो कभी देखी-लिखी नहीं। भई, अब ऐसी अर्ज़ी हो तो फिर पढ़ाई पर 'कौमा' भी क्यों लगे! आपकी तवज्जह एक और चीज़ पर दिलाना चाहूंगी। वह है अफ़साना बेगम की ज़बान में फ़ारसी और संस्कृत का बेजोड़ मिलाप। यह हमारे स्कूल के बच्चों की ख़ासियत है जिसमें मिली-जुली है पुरानी दिल्ली की उर्दू तहज़ीब और उर्दू स्कूल में हिन्दी पर ज़ोर।

कभी-कभार बात मनवाने के लिए कई बच्चे ज़्यादा मज़ेदार नाटकीय तरीक़े भी अपनाते हैं। जैसे कुछ बच्चियां सालाना जलसे में, नाटक में भाग लेने का इसरार कर रहीं थीं। क़व्वाली में तो वह पहले से ही थीं, इसलिए नाटक में और बच्चों को ले लिया गया। काफ़ी बार आकर उन्होंने मुझसे बात की, नाराज़गी जताई, इलतिजा की। एक-दो दिन यह भी किया कि क़व्वाली की तैयारी में विरोध के तौर पर शामिल ही नहीं हुईं। यह जताया भी कि हमें अगर नाटक में नहीं लिया गया तो हम क़व्वाली में भी हिस्सा नहीं लेंगे। आख़िर जब एहसास हुआ कि यह पैतरै काम नहीं आ रहे हैं तो वापिस क़व्वाली में हिस्सा ले लिया। यह सब इस एहसास और पहचान के तहत हुआ कि मैनेजर मैम पर बच्चों की परेशानी, तकलीफ़, ख़ुशी और नाराज़गी का असर आसानी से होता है। क्योंकि हमारे स्कूल में ऐसे मौक़े कम हैं, जहां बच्चों को सांस्कृतिक कार्यक्रमों में और खेल-कूद में भाग लेने के मौके ज़्यादा मिल पाएं। इसलिए हर मुमकिन कोशिश करते हैं इनमें हिस्सेदारी की। एक बच्चे को पता चला कि अल्पसंख्यक विभाग से मुसलमान बच्चों को वज़ीफ़ा मिल रहा है आर्थिक तंगी से तो बच्चे परेशान रहते ही हैं। उसने न सिर्फ़ इसके बारे में बताया बल्कि अपने और साथियों के फ़ोर्म भरे और जमा भी करवाए। इन साहब ने काफ़ी बच्चों के झूठे-सच्चे ओबीसी प्रमाण पत्र भी बनवाए और अपनी फिराख़ दिली और जुगाड़ के गुन-गान भी किए। जी, मुझसे भी!

जब मैं यह मोल-तोल, कोशिश और जतन देखती हूं तो उम्मीद-सी होती है कि यह बच्चे ज़िन्दगी में अपने लिए कुछ तो जगह बना ही लेंगे।

जहां ऊपर दी गई तस्वीरें बच्चों के एक रुख़ और व्यवहार के बारे में बोलती हैं वहीं उनके उस्ताद एक और ख़ासियत का ज़िक्र अकसर करते हैं और यही मेरा तजुरबा भी बताता है। हमारे बच्चों की तमीज़ लाजवाब है। बोलने, बात करने का अंदाज़ ऐसा होता है कि अयां हो जाए कि वह आपको इज़्ज़त बख़्श रहे हैं। साथ चलेंगे तो एक क़दम पीछे हाथ बांधकर। नज़रें और सर कुछ झुका हुआ-सा। गाड़ी तक आपके साथ आपको रुख़सत करने जाएंगे तो बड़े अदब से गाड़ी का दरवाज़ा भी आपके लिए खोलेंगे। एक महिला टीचर ने बताया कि उन्हें सैनसस के काम से मोहल्लों में जाना था, उन्होंने दो बच्चों से कहा कि वह मौहल्ले से वाक़िफ नहीं है तो वह ज़रा साथ चलें। यह बच्चे पूरा दिन न सिर्फ़ उनके साथ रहे बल्कि शाम में उन्हें बस में बिठाकर वापस गए। कई अध्यापकों के हिसाब से ''हमारे बच्चे कभी पलटकर जवाब नहीं देते, चाहे आप कुछ कहते रहें।'' खूबसूरत अल्फ़ाज़ तो मज़हब ने भी दे ही दिए हैं, हर जुमले में ''इनशाअल्लाह, माशाअल्लाह, खुदा-रसूल का वास्ता, खुदा हाफ़िज़ जैसे अल्फ़ाज़ तो शामिल रहते ही हैं। एक और टीचर ने बताया, ''आप लिखाई-पढ़ाई के अलावा कोई और ज़िम्मेदारी देकर तो देखिए कि कैसे पूरी करते हैं, ऐनवल डे में स्टेज की सजावट के लिए सामान चाहिए था जो पास में मिल नहीं रहा था। बच्चों ने पता नहीं कहां-कहां से लाकर दिया। अगर कोई खाने-पीने की चीज़ मंगा लो तो बड़े शौक़ से लाकर देंगें''।

## काम, मर्दानगी और मज़हब का अक्स?

अगर हम ऊपर दिए ज़िक्र में बच्चों के तरीक़ेकार और व्यवहार को देखते हैं तो यह उनकी पहचान कई आयामों से जुड़ी महसूस होती है। इनमें अहम है- एक लड़के/मर्द या लड़की/औरत के रूप में पहचान, काम से जुड़ी संस्कृति का एक अक्स और मज़हब से जुड़े क़ायदों और दस्तूरों की उनकी समझ। क्लास चलने के दौरान मनमानी, सत्ता को ललकारने की कोशिश के ख़तरे मोल लेना, दबदबा क़ायम करना, अना और इज़्ज़त की फ़िक्र, हदें लांघना - यह सब मर्दानगी की उनकी समझ और रुत्बे से जुड़ा महसूस होता

है। दस्तूर के तहत, जहां यह चीजें मर्दों को रुत्बे का एहसास करती हैं वहीं औरतों से रुत्बा छीन लेती हैं। कपड़े, फ़ैशन, मोबाइल फ़ोन जैसी दौलत इन्हें, रुत्बे का एहसास कराती हैं। यह सच है कि इस उम्र के बच्चों की यौन, यौन-संबंधों में रुचि होती है, लेकिन 'मोहब्बत' का खुला इज़हार, बेबाक होना, बेक़ाबू होना, मर्दानगी की निशानियों के तौर पर कुछ हद तक कुबूल कर लिया गया है। मज़ाक़ का नक़ाब अगर ओढ़ लिया जाए तो टीचर भी ऐसी हरकतों को अकसर नज़रअंदाज़ कर ही देते हैं। मर्दानगी से जुड़ी सत्ता का एहसास उनकी चेतना में कितना है, यह तो कहना मुश्किल है, लेकिन इसका इस्तेमाल तो वह करते ही हैं। अश्लील व्यवहार का इस्तेमाल, आक्रामक होने के लिए तो वह ख़ूब करते हैं। चाहे वह किसी कम उम्र महिला टीचर के साथ ही क्यों न करें। दूसरी तरफ़, लड़कियों, औरतों की अहमियत- हया, शर्म, दायरों और पर्दों में रहने-सहने से जुड़ी हैं। दोस्ती के बढ़े हाथ की तरफ़ अपना हाथ बढ़ाने का दिल अगर चाहता भी होगा तो 'अच्छी लड़की' बने रहने की कोशिश और 'बुरी लड़की' क़रार दिए जाने का डर उन्हें रोक लेता है। अगर कुछ लड़के झिझकते हुए या फिर उसूलों और दायरों के पाबंद नज़र आते हैं तो उन्हें 'लड़की', 'छक्के' जैसे ख़िताबों से नवाज़ दिया जाता है। यानी मर्दानगी की सिफ़त के कहीं कोई कमी रह गई। यह बच्चे मर्दों की सामाजिक भूमिका, जिसमें शामिल है काम और कमाई और मज़हबी तालीम, और बच्चों के मुक़ाबले में जल्दी अपनाते हैं। यह भूमिका जहां उन्हें बहुत से कौशल और दुनिया की समझ से नवाज़ती है वहीं उन्हें 'मर्दानगी' का ताक़तवर एहसास भी कराती है। ख़तरों से जूझने का चस्का और हिम्मत भी देती है। समूह की तरफ़ वफ़ादारी और ऐका शायद इस उम्र के बच्चों की ख़ासियत है लेकिन एक-दूसरे का साथ देने में जो गोपनीयता और रहस्य नज़र आता है वह बेजोड़ है। मालिक के साथ काम करना, जायज़ हक़ वसूलने के दाव-पेच और जुगाड़ करना यह सिखा ही देता होगा। जहां यह इनके मर्दानगी के पुलिन्दें का हिस्सा है वहीं 'अबला' की मदद, सहारा और लड़ाई भी इसी में शामिल है। यह इनायत सिर्फ़ साथी लड़कियों पर नहीं बल्कि महिला टीचर पर भी बरसा दी जाती है। तमीज़ जो ज़बान में झलकती है वह संस्कृति और मज़हब का मिला-जुला तोहफ़ा ज़रूर है लेकिन यह काम की दुनिया में भी मदद करती ही है। मज़ाक जिसका हिस्सा गाली-गलौज भी है शायद काम की बोरियत, नीरसता और एक-रूपता को तोड़ता है, इसीलिए इन बच्चों की रोज़मर्रा के व्यवहार का हिस्सा बन जाता है। कई महिला टीचर या तो अश्लील लफ़्ज़ों के तीर सहती हैं या फिर कई को अम्मी, ख़ाला जैसे ख़िताब भी दे दिए जाते हैं। टीचर का काम तो महिलाओं के ख़ेमे से जुड़ा मान ही लिया गया है। बच्चे महिला टीचर को पेशेवर के रूप में कम ही देखते हैं जबकि यह भी अलग सवाल है कि क्या यह टीचर अपने-आपको एक पेशेवर के रूप में देखते हैं या नहीं। बच्चों की तोड़फोड़, सत्ता को ललकारने और विरोध करने का एक तरीक़ा महसूस होता है। ऊपर से स्कूल के सामान उन्हें अपना-सा महसूस भी नहीं होता। जहां एक तरफ़ स्कूल और उससे जुड़े लोगों के पास पैसे की, रुत्बे की, उसूलों और अनुशासन के नाम पर बंदिशों की ताक़त है वहीं बच्चों के पास अनसुनी करने की, अनुशासन तोड़ने की, बिन्दास मस्ती की, तोड़-फोड़ की ताक़त है। अगर उनका बरताव नाजायज़ है तो स्कूल का अनुशासन और क़ानून भी अंधे-बहरे हैं और कभी ज़िक्र करेंगे कि ऐसा क्यों है। कभी स्कूल अनुशासन कमेटी के तरीक़ेकार पर तफ़सीली बातचीत करेंगे। आपने हमारे बच्चों का मोल-तोल तो देखा है। इसके कई कारण समझ में आते हैं। एक तो हमारे बच्चों से ज़्यादा, मेहनत और पैसे की अहमियत कौन जान सकता है। यह बच्चे जब कमाई की भूमिका के रूप में बड़ों की भूमिका अपनाते हैं तो मोल-तोल करना, अपने काम का 'जुगाड़' सिफ़ारिश और आक्रमकता दोनों के ज़रिए से करना सीख जाते हैं।

मज़हब जहां उम्मीद के चिराग़ जलाता है वहीं कई बार ग़लत व्यवहार को एक नाजयज़ स्वीकृति भी देता है। तारीख़ की एक टीचर ने किताब के हवाले से इसलाम को लेकर कुछ सवाल उठाए। बच्चों को महसूस हुआ कि वह उनके मज़हब को और मज़हबों के मुक़ाबले में कमतर बता रही हैं। टीचर की शामत आ गई। साल भर उन्हें ताने सहने पड़े और वह ठीक से क्लास नहीं ले पाईं। ख़ुद तो पढ़ाई से गए ही, औरों को भी नहीं पढ़ने दिया। इसी तरह एक कम उम्र टीचर को कुछ बच्चों ने हिदायत दी कि वह सर पर स्कार्फ़ या दुपट्टा पहना करें। यह हिम्मत इन्हें इनकी मज़हब की समझ बख़्शाती है। इस मुद्दे पर तफ़सीली बहस अगली क़िस्त में हो पाएगी।

अगली क़िस्त में कुछ और समूहों के ज़िक्र के साथ-साथ, यह देखेंगे कि बच्चे एक-दूसरे को कैसे देखते-पहचानते हैं। एक ख़ास समूह जिसका ज़िक्र करूंगी वो बच्चों की मज़हबी तालीम से जुड़ने एक स्वैच्छिक कोशिश है। ◆